संगीत त्रिवेणी

(गायन-वादन-नर्तन)

उत्तर भारतीय संगीत (गायन, वादन, नृत्य) के विविध आयाम

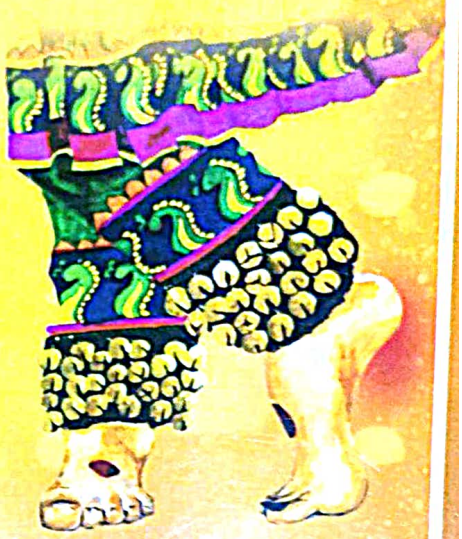

डॉ. आनंद तिवारी
प्राचार्य/संरक्षक

डॉ. हरिओम सोनी
सम्पादक

डॉ. अपर्णा
सम्पादक

आयोजक–संगीत एवं नृत्य विभाग

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

प्रकाशक : रागी पब्लिकेशन एण्ड इंटरप्राइजेज
चैतन्य हास्पिटल के पास में, सैनी के कुआँ के सामने,
वृन्दावन वार्ड, तिली रोड, सागर (म.प्र.)
ई मेल : ragipublicationandenterprises@gmail.com
सम्पर्क : 9039515004

प्रकाशन वर्ष : 2023

संस्करण : प्रथम

मूल्य : 300/-

सम्पादक मंडल :
डॉ. हरिओम सोनी
डॉ अपर्णा चाचोंदिया

Book Name-Sangeet Triveni
ISBN.No.-978-93-340-4240-5

अक्षर संयोजन एवं मुद्रण
रॉयल कम्प्यूटर्स,
वनवे परकोटा रोड, सागर (म.प्र.)
मो. : 9425452106

नोट–प्रस्तुत प्रोसिडिंग में शामिल किये गए समस्त शोध पत्रों की सामग्री एवं तथ्यों की सम्पूर्ण जबाबदारी लेखकों की होगी इस हेतु सम्पादक या समिति किसी प्रकार से जिम्मेदार नहीं होगी।

अनुक्रमणिका

क्र	विषय	पृष्ठ
1.	भारतीय राग चिकित्सा – समालोचनात्मक विश्लेषण **डॉ. अवधेश प्रताप सिंह तोमर**	01
2.	नृत्यकला एवं रासलीला **डॉ. अपर्णा चाचोंदिया**	07
3.	वर्तमान परिवेश में संगीत घरानों की प्रासंगिकता **डा. प्रेम कुमार चतुर्वेदी**	11
4.	विकसित अवनद्य वाद्य – तबला (एक दृष्टिपात) **डॉ. विभूति मलिक**	17
5.	नृत्य कला में नायिका भेद **प्रो. डॉ. नीता गहरवार**	22
6.	संगीत में घराने – गुण एवं दोष **प्रो. डॉ. अलकनंदा पलनीटकर**	26
7.	गुप्त कालीन संगीत, गायन एवं वादन **प्रॉफसर नवीन गिडियन**	30
8.	बंदिश एवं नवसृजन **पंडित देवेन्द्र वर्मा**	34
9.	हिन्दी के गीतों में संगीत **डॉ. नरेन्द्र सिंह ठाकुर,**	43
10.	देश के सामाजिक आर्थिक विकास में संगीत कलाकारों की भूमिका **प्रोफेसर नित्यानंद चौधरी**	46
11.	प्राचीन ताल पद्धति का विश्लेषणात्मक विवेचन **डॉ. गुलशन सक्सेना**	51
12.	ताल के दस प्राण **हरविंदर बीर कौर**	55
13.	संगीत, संस्कृति और समाज **डॉ. मालती दुबे**	59
14.	संगीत कला का व्यवसायीकरण **डॉ. प्रियंका शेण्डे**	61
15.	कत्थक नृत्य में नायिकाओं की अष्टावस्था **प्रो. वन्दना चौबे**	65

16. कला का व्यवसायीकरण और सोशल मीडिया की भूमिका एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — 72
डॉ. रश्मि शर्मा

17. संगीत संस्कृति और समाज — 78
डॉ. डी.के. गुप्ता

18. **मानव जीवन में संगीत और स्वास्थ्य** — 80
श्रीमती रागिनी श्रीवास्तव

19. भारतीय संगीत के विविध आयामों में महिलाओं की स्थिति और भूमिका — 84
प्रीति वर्मा

20. विभिन्न संगीत शैलियों के साथ विभिन्न तालों का सामांजस्य — 88
शैलेन्द्र सिंह राजपूत

21. संगीत में अवनद्ध वाद्यों का विकास एवं महत्व संदर्भ–तबला — 92
शैलेन्द्र वर्मा/डॉ. रवि कुमार पण्डोले

22. भारतीय संगीत गायन के विविध आयाम — 96
डॉ. जितेन्द्र कुमार शुक्ला

23. हिन्दी साहित्य में चौमासा (आषाढ़, सावन, भाद्रपद, अश्विन) लोक, ललित का मूल आधार — 100
राघवेन्द्र प्रताप सिंह/डॉ. सुजीत देवघरिया

24. युवा पीढ़ी का पाश्चात्य संगीत की ओर रूझान — 106
कृष्ण कुमार कटारे

25. महिलाओं से संबंधित मनोविकारों के निवारण में संगीत चिकित्सा की प्रासंगिकता — 108
वर्षा मीणा/डॉ. संतोष मीणा

26. भारतीय रंगमंच का स्वरूप एवं सांस्कृतिक परंपरा — 114
अंजलि वर्मा

27. तबले की उपशास्त्रीय वादन शैली — 117
डॉ राहुल स्वर्णकार

28. बुन्देली लोकगीतों में सांस्कृतिक चेतना — 123
डॉ. सरिता जैन

29. मनोचिकित्सा में संगीत का प्रयोग — 125
डॉ. हरीश वर्मा

30. अभ्यास एवं साधना (आध्यात्मिक अध्ययन) — 128
आकाश जैन

31. सितार वादन करने हेतु तकनीक का महत्व–एक अध्ययन — 132
डॉ. अमनदीप कौर

गुप्त कालीन नृत्य एवं अभिनय

डॉ. अंजलि दुबे
अतिथि विद्वान–इतिहास
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

सामान्यतः गुप्तकालीन साहित्य में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में 66 कलाओं1 की एक ऐसी सूची प्रस्तुत की है। जिनसे परिचित होना उन्होंने नागरिकों के लिए आवश्यक माना है।2

वात्स्यायन की इस कला–सूची में न केवल वे ही नाम हैं जिन्हें आज हम ललित–कला या ललित–शिल्प के नाम से पुकारते हैं, वरन् उसमें गृह–सज्जा, सौन्दर्य–प्रसाधन, खाना पकाना, खेलकूद आदि दैनिक, वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित सामान्य कार्य, शिक्षा और ज्ञान से सम्बन्धी बातें और कुलागत अथवा पारिवारिक पेशे के रूप में ज्ञात सामान्य कौशल और शिल्प आदि का भी उल्लेख है। इस प्रकार वात्स्यायन की कला–परिभाषा अत्यन्त व्यापक है जिसके कारण सामान्यतः लोग उनकी इस कला–सूची को गम्भीरता से नहीं ग्रहण करते। वे उसे रूढ़िगत, परम्पराजनित सूची मात्र समझते हैं किन्तु यदि उस प्रसंग को ध्यान में रखते हुए, जिस प्रसंग में वात्स्यायन ने इस सूची का उल्लेख किया है, इस पर विचार किया जाय तो यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि गुप्त–काल में लोग सम्भवतः छोटी–छोटी बातों में भी सौन्दर्य–सृष्टि की ओर सजग थे और वे जीवन की सभी दिशाओं में अपनी भावनाओं को कलात्मक रूप से सजीव, साकार और मौलिक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने को उत्सुक थे। वे अपने प्रत्येक कार्य को कला के रूप में ही देखने की चेष्टा करते थे। लोगों में प्रत्येक वस्तु को कलागत .ष्टि से देखने के भाव व्याप्त थे और जीवन की यह सुकुमारता (नजाकत) वात्स्यायन की कोरी कल्पना न थी यह पुरातात्विक अवशेषों और साहित्यिक वर्णनों से भली भाँति परिलक्षित होता है।

नृत्य

प्राचीन काल से ही इस देश में नृत्य का प्रचार रहा है और साहित्य में स्त्री–पुरुष दोनों के नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। पर यह कला नारी–प्रधान ही अधिक थी। गुप्त–काल में नृत्य की लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि परिवार के भीतर तो लड़कियाँ नृत्य सीखतीं और नृत्य करती ही थीं परिवार के बाहर भी उसका व्यापक प्रचार था। मन्दिरों में, समाज में, राजदरबार में नृत्य हुआ करते थे। नृत्य ने एक पेशे का रूप धारण कर लिया था और लोगों के बीच नर्तकियों का काफी सम्मान था। लोग पुत्र–जन्म23, विवाह आदि के अवसरों पर घरों में उनका नृत्य कराते थे।

नृत्य के रूपों के सम्बन्ध में साहित्य से विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। मालविकाग्निमित्र में छलिक नामक नृत्य का उल्लेख हुआ है, पर उसके रूप–स्वरूप की कोई चर्चा नहीं है। इसी प्रकार नर्तकियों द्वारा चामर नृत्य किये जाने का उल्लेख मिलता है।24 नृत्य के दृश्यों का कतिपय अंकन गुप्तकालीन चित्रों और तक्षण में हुआ है। उनसे उनके स्वरूप का कुछ अनुमान किया जा सकता है। अजन्ता के 17वें लयण में नृत्य

का एक अंकन मिलता है। उसमें एक नर्तकी नृत्य कर रही है और उसके साथ चार स्त्रियाँ मँजीरा और एक पुरुष मृदंग बजा रहा है। इसी प्रकार बाघ के चौथे लयण में दो नृत्य–समूहों का चित्रण हुआ है। इन दोनों ही नृत्य–समूहों में मृदंग, झाल और दण्ड बजाती स्त्रियों से घिरी एक स्त्री नृत्य कर रही है। सारनाथ से प्राप्त एक शिलाफलक पर क्षान्तिवादक जातक का .श्य अंकित है। उसमें एक स्त्री वेणु, भेरी, झाल और मृदंग बजाती स्त्रियों के बीच नृत्य कर रही है।25 भूमरा के शिव–मन्दिर के फलकों में भी कुछ नृत्य करते गणों का अंकन हुआ है।

अभिनय

अन्यत्र अनेक नाटकों के गुप्त–काल में रचित होने की बात कही जा चुकी है।26 इस काल में नाटकों का महत्त्व उनके अभिनय में ही अधिक समझा जाता था। नाटक की सफलता उनके प्रयोगों से ही आँकी जाती थी।27 और इस बात पर तत्कालीन नाटककारों ने काफी बल दिया है।28 इससे यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि उन दिनों नाटकों के प्रति लोगों की काफी अभिरुचि थी और वे राजसभाओं में तो अभिनीत होते ही थे, बसन्त आदि सार्वजनिक29 और विवाहादि पारिवारिक आनन्दोत्सवों पर भी नाटकों का अभिनय हुआ करता था। उसमें स्त्रीपुरुष दोनों ही समान रूप से भाग लेते थे और अभिनय–कला में दक्षता प्राप्त करते थे।

गुप्तकालीन अभिनयशाला अथवा रंगमंच का क्या रूप था, इसकी कहीं कोई स्पष्ट चर्चा नहीं मिलती और न अभिनयशाला का कहीं कोई प्राचीन रूप ही उपलब्ध हुआ है। कुछ लोग भरत के नाट्यशास्त्र को गुप्त–काल से पूर्व की रचना मानते हैं और अनुमान करते हैं कि उसमें वर्णित रंगमंच के समान ही गुप्तकालीन रंगमंच भी होते रहे होंगे। भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगशाला की व्यवस्था इस प्रकार की जाती थी कि संलाप, गायन और श्रवण अच्छी तरह हो सके। इसके लिए रंगमंच के सामने दर्शकों के लिए मंचवत अर्थात् सोपान सरीखी गैलरी होती थी।30 कालिदास ने भी इन्दुमती के स्वयंवर की चर्चा करते हुए रघुवंश में इसी प्रकार के दर्शक–कक्ष का उल्लेख किया है।31 साहित्य में वर्णित अभिनयशाला का यह रूप रोमक और यवन अभिनयशालाओं से बहुत ही मिलता हुआ है। यदि भारतीय अभिनयशालाओं का वस्तुतः यही रूप था तो यह कल्पना करना अनुचित न होगा कि अभिनयशाला का यह रूप इस देश में वहीं से प्राप्त हुआ होगा।

रंगमंच के दो भाग होते थे। आगे का भाग, जहाँ अभिनय प्रस्तुत किया जाता था, प्रेक्षागृह कहलाता था।32 और उसके पीछे का भाग नेपथ्य33 कहलाता था और वह आजकल के ग्रीनरूम का काम देता था। वहाँ अभिनेता अभिनय के निमित्त अपनी रूप–सज्जा किया करते थे। प्रत्येक अभिनेता का उसके अभिनय के अनुरूप वस्त्र और भूषा होती थी और अभिनय के समय वे उसी से पहचाने जाते थे। कालिदास ने रंगशाला के प्रसंग में तिरष्कारिणी34 शब्द का प्रयोग किया है। लोगों की धारणा है कि इसका तात्पर्य पर्दे से है जो प्रेक्षागृह में आजकल के समान ही .श्य की पीठिका प्रस्तुत करते थे। कुछ लोग इस प्रकार के कई पर्दों के उपयोग की भी कल्पना करते हैं, पर इसका कोई स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

नाटक के प्रदर्शन से पूर्व प्रथमोपदेश–दर्शन अर्थात् रिहर्सल होता था। उस समय मांगलिक उद्घाटन के निमित्त ब्राह्मणों की पूजा की जाती थी और उन्हें भोजन करा कर दक्षिणा भेंट की जाती थी।35 नाटक के आरम्भ में सूत्रधार रंगमंच पर उपस्थित होता था और किसी अभिनेता को बुला कर उसे बताता था कि कौन–सा नाटक अभिनीत होगा और फिर उससे उसकी तैयारी करने को कहता था। तदनन्तर सूत्रधार दर्शकों की ओर आ.ष्ट होता था और उनसे सहानुभूतिपूर्वक अभिनय देखने का अनुरोध करता था। तत्पश्चात् नेपथ्य से किसी अभिनेता की आवाज सुनायी पड़ती और अभिनेता मंच पर उपस्थित होते थे और

इस प्रकार नाटक आरम्भ होता था।

सन्दर्भ–

1. सामान्यतः साहित्य में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है पर इस सूची में 66 नाम हैं।
2. वात्स्यायन कामसूत्र, (काशी संस्त सीरीज), पृ. 29–30।
3. रघुवंश, 5। 65
4. मेघदूत, 1। 39
5. साहनी, सारनाथ संग्रहालय सूची, पृ. 234, संख्या सी. (बी.)
6. पीछे, पृ. 517–21
7. अभिज्ञान शाकुन्तल, 1। 1, मालविकाग्निमित्र, 2। 9
8. मालविकाग्निमित्र, अंक 1
9. वही, अंक 1
10. नाट्यशास्त्र, 2 । 97
11. सर्ग 6।
12. मालविकाग्निमित्र, अंक 1
13. अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक 1
14. मालविकाग्निमित्र, अंक 2
15. वही, अंक 2
16. मालविकाग्निमित्र, पृ. 264, रघुवंश, 14 । 25